अजनबी शहर, नई दृष्टि और

आत्मखोज की यात्रा

डॉ .गीतिका श्रीवास्तव
सह आचार्य, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय

दिसंबर 2019 की वह रात आज भी मेरी स्मृतियों में जमी हुई ठंड की तरह ताजा है। विमान जब पेरिस की धरती पर उतरा, तब रात आधी बीत चुकी थी। घड़ी ने मध्यरात्रि पार कर ली थी और तापमान शून्य से नीचे जा चुका था। भारत की परिचित गर्माहट से निकलकर यूरोप की उस ठिठुरती हवा में कदम रखते ही मुझे पहली बार अपने निर्णय का वास्तविक अर्थ समझ आया। यह केवल एक यात्रा नहीं थी, यह मेरे जीवन का पहला पूर्णतः एकल अंतर्राष्ट्रीय शैक्षणिक अभियान था। विश्व के अग्रणी वैज्ञानिकों के बीच, न्यूरो साइंस और मस्तिष्क अनुसंधान के अत्याधुनिक वातावरण में, मैं वहां एक शोध प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने पहुंची थी। जब हवाई अड्डे के स्वचालित दरवाजे खुलते ही बर्फीली हवा चेहरे से टकराई, मेरे भीतर वैज्ञानिक जिज्ञासा से पहले एक साधारण यात्री का संकोच जाग उठा। भाषा अनजानी, उच्चारण अपरिचित और शहर पूर्णतः नया, सब कुछ एक साथ मेरे सामने खड़ा था। फिर भी, उस ठंड में एक विचित्र ऊर्जा थी, जैसे प्रकृति स्वयं कह रही हो कि असुविधा ही विकास का पहला कदम है।

अधूरे वाक्यों के सहारे संवाद का पुल

पेरिस पहुंचते ही मुझे पहली चुनौती भाषा की मिली। अंग्रेजी का प्रयोग सीमित था और फ्रेंच उच्चारण मेरे लिए बिल्कुल नया। स्थानों के नाम, मेट्रो स्टेशनों की घोषणाएं, यहां तक कि लोगों के नाम भी मेरे लिए मानो किसी नए संगीत की धुन थे, जिन्हें समझने में समय लगना स्वाभाविक था। एक साधारण प्रश्न पूछना भी कई बार एक छोटी-सी यात्रा बन जाता। मैं शब्द खोजती, सामने वाला व्यक्ति मुस्कुराकर फ्रेंच में कुछ कहता और हम दोनों ही संकेतों और अधूरे वाक्यों के सहारे संवाद का पुल बनाते, लेकिन यही अनुभव धीरे-धीरे मुझे एक महत्वपूर्ण जीवन पाठ सिखाने लगा। भाषा केवल शब्दों का माध्यम नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं का विस्तार है। मुस्कान, सहयोग, धैर्य और सम्मान ये सार्वभौमिक भाषाएं हैं, जिन्हें अनुवाद की आवश्यकता नहीं होती। कुछ ही दिनों में विभिन्न देशों से आए प्रतिभागियों के साथ संवाद सहज होने लगा।

एफिल टॉवर और पेरिस की सुंदरता

औपचारिक प्रशिक्षण के बाद का समय मेरा अपना था। मैंने निर्णय लिया कि इस शहर को केवल पर्यटक की तरह नहीं, बल्कि एक खोजकर्ता की तरह देखूंगी। पैदल चलकर, गलियों को महसूस करके और शहर की धड़कन को सुनकर। पेरिस की सड़कों पर अकेले चलना एक अद्भुत अनुभव था। ठंडी हवा, हल्की रोशनी और इतिहास से भरी इमारतें हर मोड़ एक कहानी कहता प्रतीत होता। सीन नदी के किनारे टहलते हुए मुझे लगा कि यह शहर केवल स्थापत्य का नहीं, विचारों का शहर है। यहां कला, दर्शन, साहित्य और विज्ञान सब एक साथ सांस लेते हैं, लैटिन क्वार्टर की बौद्धिक ऊर्जा, मोंटमार्ट्रे की कलात्मक आत्मा, संग्रहालयों की गंभीरता और कैफे की सहजता हर स्थान अपने भीतर एक अलग दुनिया समेटे हुए था। फिर वह क्षण आया, जिसे शब्दों में बांधना आज भी कठिन है। जब मैंने पहली बार एफिल टॉवर को सामने देखा। वह वही संरचना थी, जिसे मैंने बचपन में पुस्तकों के पन्नों पर देखा था। भूगोल की किताबों में, पोस्टकार्डों में और कल्पनाओं में, लेकिन वास्तविकता में उसे देखना एक अलग ही अनुभव था। रात के अंधेरे में रोशनी से जगमगाता वह टॉवर केवल लोहे की संरचना नहीं था। वह समय, सपनों और उपलब्धि का प्रतीक था। उस क्षण मुझे लगा कि जीवन में देखी हुई चीजें सपनों को आकार देती हैं और जब वे सपने साकार होते हैं, तो व्यक्ति स्वयं को नए रूप में पहचानता है। पेरिस की सुंदरता केवल उसकी इमारतों में नहीं, बल्कि उसकी लय में है। लोग पैदल खूब चलते हैं, बातचीत में समय लेते हैं और जीवन को अनुभव की तरह जीते हैं। यह शहर आपको रुकना सिखाता है। देखने के लिए, सोचने के लिए और महसूस करने के लिए। लूव्र संग्रहालय की भव्यता, नोट्रे-डेम की गंभीरता, सीन के पुलों की शांति और छोटे-छोटे कैफे की गर्माहट सब मिलकर एक ऐसा वातावरण बनाते हैं, जहां मन स्वतः चिंतनशील हो जाता है।

वातावरण

शोध प्रशिक्षण कार्यक्रम का वातावरण अत्यंत अनुशासित था। समय की पाबंदी केवल औपचारिकता नहीं, बल्कि कार्य संस्कृति का मूल तत्व थी। प्रत्येक सत्र निर्धारित समय पर प्रारंभ और समाप्त होता, प्रत्येक चर्चा सटीक और गहन होती। यहां मैंने पहली बार देखा कि ज्ञान केवल जानकारी का संचय नहीं, बल्कि सोचने की विधि है। एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, जो हर प्रश्न को गहराई से देखने की प्रेरणा देता है। शीर्ष शोधकर्ताओं के साथ संवाद करना किसी पुस्तक के जीवंत हो उठने जैसा अनुभव था। जिन सिद्धांतों को मैंने वर्षों तक पढ़ा था, वे अब प्रयोगशालाओं में आकार लेते दिख रहे थे। जटिल उपकरण, उन्नत तकनीकें और विचारों की निरंतर धारा यह सब मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। सबसे महत्वपूर्ण यह था कि वहां प्रतिस्पर्धा नहीं, सहयोग की भावना थी। प्रश्न पूछना प्रोत्साहित किया जाता था, जिज्ञासा को सम्मान मिलता था और विचारों का आदान-प्रदान खुलेपन से होता था। मुझे यह समझ में आया कि सच्चा वैज्ञानिक वातावरण वही है, जहां ज्ञान साझा करने से बढ़ता है, छिपाने से नहीं।

अनुभूति

छोलिया की याद

छोलिया शब्द के साथ बचपन की बहुत सी यादें जुड़ी हैं। बीते दिनों छोलिया लेकर आई तो सब्जी बनाते हुए चलचित्र की भांति कितनी ही यादें आंखों के आगे तैर आईं। किंग्जवे कैंप का घर टूटने पर हमें जहांगीरपुरी में डीडीए द्वारा बनाए नए फ्लैट्स में शिफ्ट कर दिया गया। जिस घर में पैदा हुई उसे छोड़कर जाना, स्कूल, सहेलियां, बचपन के खेल, मां की यादें सभी तो उसी घर से जुड़ी थीं। मायूसी, दर्द और असहनीय पीड़ा का अहसास तारी था बस।

उस वक्त बहुत बड़ी नहीं थी, पर इतनी भी छोटी नहीं थी। पापा बताते हैं कि वह पाकिस्तान से माइग्रेट होकर यहां आए थे, कैंप टूटने पर मुझे भी यही महसूस होता था कि हमें भी जैसे देश निकाला मिल गया हो। कहां किंग्सवे कैंप का खुला-खुला घर और कहां जहांगीरपुरी के दड़बे जैसा फ्लैट! रसोई, एक इकलौता कमरा और एक नन्हा सा वेहड़ा! हम दो परिवार इस एक कमरे के फ्लैट में शिफ्ट हुए। कैसे रहे? याद करती हूं, तो मन भर आता है। नए सिरे से जिंदगी शुरू करनी आसान कहां होती है भला? घर छोटे-छोटे थे अतः अधिकतर लोग घर के बाहर चारपाई बिछा उसी पर बैठे कई काम निपटा लेते। सब्जी काटना, सिलाई मशीन पर कपड़े सिलना, कपड़े तह करना और जाने कितने काम। मैले कपड़े गली के बाहर लगे सार्वजनिक नल पर जाकर धोए जाते। इन कामों में एक काम था छोलिया छिलना। सर्दी की गुनगुनी धूप में घर के काम निपटाकर कुछ महिलाएं स्वेटर बुनती, कुछ सिलाई कढ़ाई करतीं तो कुछ छोलिया छिलने बैठ जाती। पहले पहल तो समझ न आया कि रोज इतने छोलिए का करती क्या होंगी। फिर पता चला कि सब्जी वाले भैया छोलिया छिलने के बदले पैसे देते हैं। ढेर के ढेर हरे छोलिए के गठ्ठर सामने पड़े रहते और महिलाएं बतियाते हुए बीनती जाती। सच पूछिए तो आसान काम नहीं था ये। अपने घर के लिए छोलिया छीलते हुए ही हाथ थक जाते थे और वे महिलाएं तो बिना नागा ढेर सारा छीलती थीं। छिला छिलाया छोलिया लाई और झटपट बना भी लिया, लेकिन जाने क्यों ये सब आज बहुत याद आया।

अंजू खरबंदा
शिक्षिका

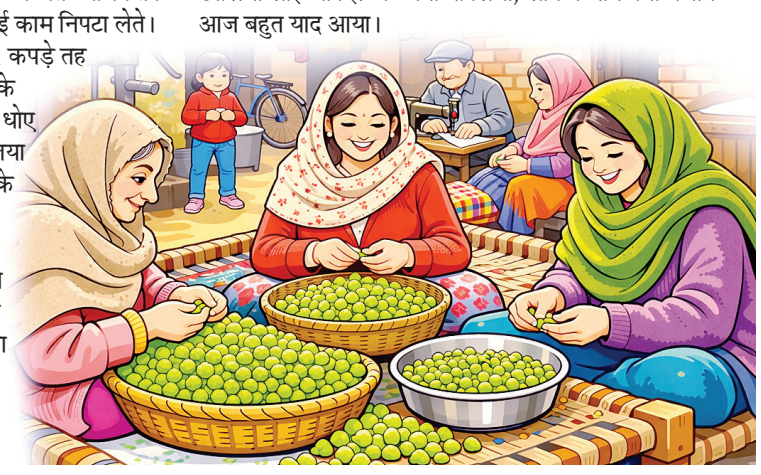

संस्मरण

कर्म की प्रतिध्वनि

उस रोज इज्जतनगर स्टेशन पर टिकट बुक कराने गया तो उम्मीद से ज्यादा भीड़ थी। टिकट विंडो से बाहर तक लंबी लाइन। शायद त्योहार नजदीक होना इसकी वजह रहा हो। लाइन में लगे लोग इंतजार के फासले को अपने-अपने हिसाब से तय कर रहे थे। टिकट विंडो में हाथ डाला ही था कि एक सज्जन जो कि लाइन में ठीक मुझसे पहले थे और लगभग आधा घंटे किसी से फोन पर क्वेरीज कर-कर के अपने दर्जन भर टिकट (कुछ कैंसिल कुछ बनवाकर) अभी-अभी निकले ही थे, दौड़ते हुए आए और मेरे हाथ की परवाह किए बिना विंडो में हाथ घुसाते हुए गुस्से की मुद्रा में टिकट कर्ता से बोले- "मैडम आपने हमारा टिकट गलत तारीख का दे दिया।" "नहीं, ऐसा तो नहीं है, टिकेट दिखाइए"- टिकेट बनाती लड़की बोली। "ऐसा कैसे नहीं है ये देखिए! हमें जाना 20 को है और आपने टिकट 21 का बना दिया"- टिकट देते हुए उन सज्जन ने खौरियाते हुए कहा। लड़की ने टिकट देखा और उस व्यक्ति द्वारा भरे गए फॉर्म से मिलाया। पूरी तरह आश्वस्त होकर बोली -"यह देखिए सर! आपने फॉर्म में जो डिटेल दी है, वही टिकट में है।" व्यक्ति ने तेजी से फॉर्म और टिकेट का मिलान किया। खोजने पर भी उस लड़की की नहीं, बल्कि अपनी ही कमी पाकर तुरत गिरगिटिया रूप धर क्रोध को याचना में बदलते हुए बोला- "सॉरी मैडम! ग़लती हो गई। ऐसा कीजिए, इस टिकट की डेट बदल दीजिए।" "ऐसे डेट नहीं बदली जाती। अब यह टिकट कैंसिल करके दूसरा बनवाना पड़ेगा आपको" - लड़की ने कहा। "देख लीजिए कुछ हो सके तो, वरना ऐसा ही ..." वह व्यक्ति बोला।

इतनी देर में लाइन में लगे लोगों का सब्र जवाब दे चुका था। वे अपने-अपने भाषाई संस्कारों से उस व्यक्ति को नवाजने लगे। लड़की ने इस घमासान के बीच कुछ फॉर्म उस व्यक्ति को दिए और ध्यान पूर्वक भरकर लाइन में लगने को कहकर मेरा टिकट बनाने लगी। मैंने टिकट और बकाया पैसे जैसे-तैसे विंडो से मुट्ठी बांधकर बाहर निकाले और स्टेशन के बाहर आ गया। बाहर आकर टिकेट की डेट और अन्य डिटेल चैक की। किराये की राशि देखी। हाथ में आए पैसे भी चैक किए। मिलान किया तो पाया कि मुझ पर चार सौ रुपए ज्यादा आ गए हैं। वापस दो सौ रुपया होने थे। सौ-सौ के चक्कर मे एक सौ के नोट के साथ एक पांच सौ का आ गया था। मैंने फिर से एक बार टिकट और पैसों का मिलान किया और इसे तत्कालीन माहौल में लड़की की मानवीय त्रुटि मानते हुए पैसा वापस करने विंडो पर आ गया। "क्यों, आपकी भी डेट बदल गयी है क्या?" लाइन में लगा एक व्यक्ति बोला। "नहीं भाई"- मैंने जवाब दिया। "तो क्या कोई इन्क्वायरी करनी है, वो विंडो उधर है"- एक और व्यक्ति बोला। "इसीलिए महिला को विंडो पर नहीं बैठाना चाहिए, लोग बार-बार दर्शन करने ..." एक और व्यक्ति ने दांत चियारे।

"मैडम मुझ पर चार सौ रुपया ज्यादा आ गए हैं।" - इस चुहल चर्चा के बीच मैं विंडो की ओर मुंह करके जोर से बोला। लड़की टिकट बनाते से सहसा रुकी। मुझे देखा। मैंने मुट्ठी बांधकर टिकट और धनराशि उसे बढ़ा दी। लड़की ने कम्प्यूटर में कैलकुलेट किया और बोली - "थैंक्स अ लॉट सर!" उसकी आंखों में कृतज्ञता की नमी थी, जिसे साफ-साफ देखा और अनुभव किया जा सकता था। अगला हफ्ता बनारस में रहा। वापसी में श्रमजीवी एक्सप्रेस से बरेली लौट रहा था। रात में लगभग दो बजे ट्रेन से उतरा। बाहर आकर रिजर्व ऑटो लिया और घर के गेट पर पहुंच गया। ऑटो वाले को पैसे देने के लिए जैसे ही जेब में हाथ डाला तो सन्न रह गया। जेब से पर्स नदारद था। पर्स में पैसों के अलावा अन्य जरूरी कागजात भी थे। तुरंत ऑटो को बैक किया, लेकिन तब तक ट्रेन जा चुकी थी। उसी ऑटो से वापस आया। पत्नी से पैसे लेकर पेमेंट किया और पर्स में गुम हुई चीजों के बारे में क्या करना है यही सोचते विचारते सो गया।

सुबह ऑफिस पहुंचा और अपने कामों में रम गया। दोपहर में लंच के लिए घर जाने को निकल ही रहा था कि एक अनजान नंबर से फोन आया। "आप कौन बोल रहे हैं जी?"- उधर से आवाज थी। "आपने किसको लगाया है जी?" "जी मैं अवनीश हूं श्रीमान!" मैंने कहा। "कहां से जी?" "बरेली से जी!" "आप अभी बनारस गए थे क्या?" "जी हां, लेकिन आप कौन हैं और यह सब क्यों पूछ रहे हैं?" मैं बोला। "बताऊंगा जी, पहले ये बताओ आपके आई कार्ड पर, जो फोटो लगा है, उसमें आपने किस रंग की शर्ट पहनी है?" वार्तालाप यहां तक आते आते मेरे अंदर पॉजिटिव वाइब्स बहने लगी थीं। "व्हाइट और पिंक चैक!" मैं चहककर बोला और कार्ड पर अंकित पूरी डिटेल भी बता दी। "बहुत बढ़िया यादव जी। मैं राम कीरत सिंह बोल रहा हूं गजरौला से। मेरे पास आपका पर्स है, जिसमे पैंतालीस सौ बासठ रुपए और अन्य कागजात सुरक्षित हैं। रात को बरेली से ट्रेन में बैठा था। सुबह उतरते वक्त सीट के नीचे से अटैची खींची तो यह पर्स मिला। परिचय पत्र में दिए नंबर को मिलाकर ही आप से बात कर रहा हूं। बताइए आपकी अमानत कहां और कैसे पहुंचवा दूं? वैसे कल तक मैं मुरादाबाद में हूं अपने बेटे के पास।" "मैं कल खुद आऊंगा आपके दर्शन करने भाईसाब, मुरादाबाद मेरा गृह जनपद है", मैं भाव विभोर होकर बोला। "अरे वाह! यह तो बहुत बढ़िया। मैं इंतजार करूंगा। पहुंचने को हों तब दस मिनट पहले फ़ोन कीजियेगा, मैं लेने आ जाऊंगा"- उधर से आवाज थी। अगली सुबह बस से मुरादाबाद उतरा। सामने एक सामान्य कद काठी, लेकिन मुस्कराते और जिंदगी की चमक से भरपूर चेहरे को देखते ही मैं पहचान गया कि यही हैं रामकीरत जो वाकई राम जी की कृति भी है और कीर्ति भी। रामकीरत जी के साथ पूरा दिन मुहब्बत और इंसानी जज्बात से लबरेज रहा। लौटते वक्त तक अपरिचय एक खूबसूरत रिश्ते में तब्दील हो चुका था। पुनः यह विश्वास और पुख्ता हुआ कि दुनिया हमारे कार्य व विचारों की प्रतिध्वनि ही है। यह वही लौटाती है, जो हम इसे सौंपते हैं।

डॉ. अवनीश यादव
प्रांतीय शिक्षा सेवा संवर्ग, उप्र

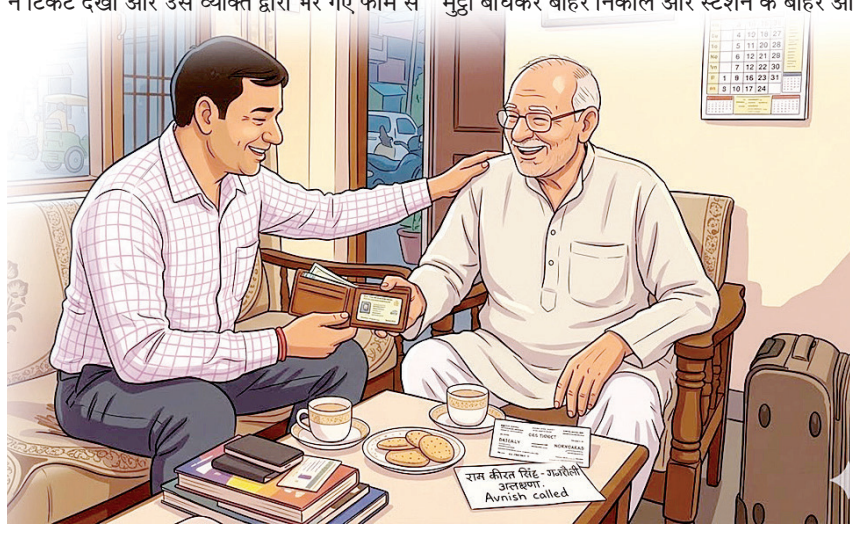

विमर्श

'आधे आसमान' से ही पूर्ण होगा आकाश

स्त्री सृष्टि की रचयिता है, जो अपने गर्भ से ही जीवन का प्रारंभ करती है। वह परिवार की आत्मा है और समाज की कुशल वास्तुकार है, जो अपनी बौद्धिकता एवं लगन से परिवार में मिठास एवं समाज को प्रगतिशील बनाती है। स्त्री के बिना संसार की कल्पना नहीं की जा सकती है, क्योंकि वह जीवन है। स्त्री के सम्मान में ही सृष्टि का संतुलन एवं समाज का उत्थान है, लेकिन फिर भी सदियों से संसार की स्त्रियां उपेक्षित रही है। यह दोहरी प्रवृति हमारे समाज की सबसे बड़ी विडंबना है, जो आज के वैज्ञानिक युग में भी व्याप्त है। एक ओर जहां हमारे देश में स्त्रियों को मौखिक रूप से देवी का स्थान दिया गया है, वहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने आज भी स्त्रियों को बंधनों से जकड़े रखा। इसके पूर्व ही सती प्रथा, बाल विवाह और कन्या भ्रूण हत्या जैसी अनेक कुरीतियों द्वारा शोषण किया गया और आज भी देश में शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में महिलाएं पिछड़ी हुई हैं और महिलाओं के साथ बालात्कार एवं हिंसा की खबरें तो रोज की बात हो गई है। वर्तमान आंकड़े इस कड़वी हकीकत को और स्पष्ट करते हैं।

अंबिका अंबी
लेखिका

वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट 2025 के अनुसार भारत 148 देशों में 131 वें स्थान पर है, शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होने के साथ महिलाओं की साक्षरता दर बढ़ी है और उच्च शिक्षा में नामांकन लगभग 46 प्रतिशत तक पहुंच गया है, लेकिन परिवार और देश की अर्थव्यवस्था में भागीदारी काफी कमजोर है। महिला श्रम बल भागीदारी दर थोड़ा बढ़ी, परंतु पुरुषों की तुलना में अभी भी बहुत ज्यादा कमजोर है। महिलाएं घरेलू कामों में अधिक समय बिताती हैं, जिससे उनकी वेतन वाली नौकरियों में भागीदारी सीमित रहती है। देश में महिलाओं के साथ उत्पीड़न एवं हिंसा अधिक चिंता का विषय है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार महिलाओं के खिलाफ अपराधों में निरंतर वृद्धि हो रही है। कार्यस्थल पर उत्पीड़न, साइबर क्राइम और घरेलू हिंसा आज भी लाखों महिलाओं की आजादी छीन रही है। अक्सर सुनने को मिलता है महिलाओं को नौकरी में आरक्षण मिला, यात्रा में भी सुविधा मिली, शिक्षा में साइकिल एवं पोशाक की सुविधा मिल तो गई, अब और कितनी बराबरी चाहिए? यह तंज करने से पहले चिंतन करने की आवश्यकता है कि क्या ये सुविधाएं और आरक्षण ने महिलाओं को परिवारिक-सामाजिक स्तर पर पुरुषों के बराबर अधिकार और स्वतंत्रता दे रही है? अगर लैंगिक बराबरी मिल रही है, तब देश में ही असुरक्षित कैसे है? न आजादी से कही आ-जा सकती, न आजादी से पढ़ लिख सकती, न आजादी से कमा सकती और न ही आजादी से जी सकती है।

आजकल एक और तंज कसे जा रहे है कि 'स्त्रियों को थोड़ी आजादी क्या मिली संस्कारहीन बनती जा रही है।' इस तंज पर एक सवाल की 'क्या संस्कारहीन होने के पैमाने एवं जेंडर निर्धारित होता है?' सदियों से नशे की लत, जुआ, झूठ, धोखा, हिंसा, व्यभिचार जैसी आदतें पुरुषों में भी रही हैं, लेकिन उन्हें 'संस्कारहीन' कहकर समाज ने कभी इतना तीखा तंज नहीं कसा, जितना आज एक लड़की को खुलकर बोलने, देर रात बाहर रहने, करियर चुनने या अपनी पसंद की शादी करने पर कसता है। यह दोहरा मापदंड संस्कार को परिभाषित नहीं करता है। संस्कार असल में नैतिकता, ईमानदारी, सम्मान, जिम्मेदारी और मानवता का नाम है, जो नैतिकता और मर्यादा की सीमा से घिरी है। महिलाओं की बढ़ती आजादी ने समाज को संस्कारहीन नहीं बनाया, बल्कि हिंसा और असमानता को कम करने की कोशिश की है।